SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

स्वामी विवेकानंद और विश्व धर्म सम्मेलन शिकांगो

संतोष रजक, (Ph.D.) इतिहास विभाग,
रामजयपाल कॉलेज, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
संतोष रजक, (Ph.D.) इतिहास विभाग,
रामजयपाल कॉलेज, छपरा, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 12/10/2020
Revised on : -----
Accepted on : 19/10/2020
Plagiarism : 03% on 12/10/2020

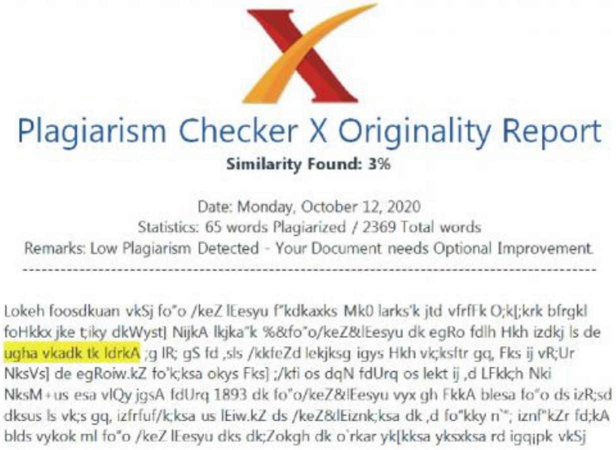
Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 3%

Date: Monday, October 12, 2020
Statistics: 65 words Plagiarized / 2369 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

Lokeh foosdkuan vkSj fo"o /keZ lEesyu f"kdkaxks Mk0 larks'k jtd vfrfFk O;k[;krk bfrgkl foHkkx jke t;iky dkWystl NijkA lkjka"k %&fo"o/keZ&lEesyu dk egRo fdlh Hkh izdkj ls de ugha vkadk tk ldrkA ;g lR; gS fd ,sls /kkfeZd lekjksg igys Hkh vk;ksftr gq, Fks ij vR;Ur NksVs] de egRoiw.kZ fo'k;ksa okys Fks] ;/kfi os dqN fdUrq os lekt ij ,d LFkk;h Nki NksM+us esa vlQy jgsA fdUrq 1893 dk fo"o/keZ&lEesyu vyx gh FkkA blesa fo"o ds izR;sd dksus ls vk;s gq, izfrfuf/k;ksa us lEiw.kZ ds /keZ&lEiznk;ksa dk ,d fo"kky n`"; iznf"kZr fd;kA blds vykok ml fo"o /keZ lEesyu dks dk;Zokgh dk o`rkar yk[kksa yksxksa rd igq¡pk vkSj

शोध सार

विश्वधर्म–सम्मेलन का महत्व किसी भी प्रकार से कम नहीं आंका जा सकता। यह सत्य है कि ऐसे धार्मिक समारोह पहले भी आयोजित हुए थे, पर अत्यन्त छोटे, कम महत्वपूर्ण विषयों वाले थे, यद्यपि वे समाज पर एक स्थायी छाप छोड़ने में असफल रहे। किन्तु 1893 का विश्वधर्म–सम्मेलन अलग ही था। इसमें विश्व के प्रत्येक कोने से आये हुए प्रतिनिधियों ने सम्पूर्ण के धर्म–सम्प्रदायों का एक विशाल दृश्य प्रदर्शित किया। इसके अलावा उस विश्व धर्म सम्मेलन को कार्यवाही का वृतांत लाखों लोगों तक पहुँचा और उसने अभूतपूर्व प्रतिक्रिया का सृजन किया। अपने विशाल आकार, जनता की प्रतिक्रिया की विशालता और संप्रेषण की व्यापकता ने संसार के धार्मिक इतिहास में इस विश्व धर्म सम्मेलन से एक अनुठी बना दिया, किन्तु विश्व धर्म वास्तव में जिसके कारण महत्वपूर्ण और विश्वविख्यात हुआ, वे थे दार्शनिक 'स्वामी विवेकानन्द' जो एक विशेष उद्देश्य, 'नव युग अरूणोदय' का संदेश लेकर आये थे और सार्वभौमिकता व सद्भाव ही जिनका नारा था। अपने गुरू भाइयों को लिखित एक पत्र में स्वामीजी लिखते है– *''यदि आवश्यकता हो तो प्रत्येक वस्तु का बलिदान करना होगा, उस एक भाव सार्व भौमिकता हेतु।'*

मुख्य शब्द

स्वामी विवेकानंद जी, विश्वधर्म, संप्रेषण।

विश्वधर्म–सम्मेलन 1893 में शिकागों में आयोजित हुआ था। भारत का एक युवक, व्यावहारिक रूप से पूर्णतया अज्ञात हिन्दू संन्यासी, जिसने इसमें भाग लिया था, वह सम्मेलन में सबके विस्मय का करण, सबसे महानतम, सबसे लोकप्रिय ओर प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। यह सब अब इतिहास का एक अंश है। विश्वधर्म –सम्मेलन एवं स्वामीजी का इसमें भाग लेना, इन दोनों के अभिप्राय अथवा महत्व को स्पष्ट समझने के लिये हमें

अपने आप से प्रश्न पूछना होगा– किन परिस्थितियों ने स्वामी विवेकानन्द को विश्वधर्म–सम्मेलन में प्रथम स्थान प्राप्त कराया?

स्वामीजी की जीवनी के पाठकों ने इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न प्रकार से दिया है। उदाहरण के लिये, कुछ व्यक्तियों का कहना है कि विश्वधर्म–सम्मेलन में भाग लेना स्वामीजी का पाश्चात्य देशों में जाने का प्रधान कारण था, भारतीय जनता के उत्थान के लिये धन एकत्र करना। स्वामीजी ने कन्याकुमारी में भारतीय द्वीप की अन्तिम चट्टान पर बैठकर तीन दिन एवं रात लगातार ध्यान किया था। उनके ध्यान का विषय ईश्वर या भगवान नहीं थे, बल्कि भारत, उसका भूत, वर्तमान और भविष्य था। अपनी परम प्रिय मातृभूमि पर किये गये ध्यान की प्रशान्त गहराईयों में उनका आमना–सामना भारत के प्राचीन गौरव एवं उसकी वर्तमान अवनति से हुआ। उन्होंने स्पष्ट देखा कि यदि भारत को भविष्य में विकास करना है, तो उसकी उच्चतम अध्यात्मिक चेतना द्वारा ही होगा, जिसने उसे सदैव से सभी देशों का और आस्था का आधार बनाया है।[1] भारत स्वामीजी के समय में दरिद्र था। यहाँ के लाखों लोग आर्थिक रूप से पिछड़े हुये थे, राजनीतिक रूप से यह स्वतन्त्र नहीं था और सामाजिक रूप से कठोर जातिवाद के नियमों से बँधा था। स्वामीजी के जीवनीकार हमें बताते हैं कि जब स्वामीजी ने कन्याकुमारी में समुद्र की ओर देखा, तो एक प्रकाश की किरण उनकी दृष्टि में आई और उन्होंने उसका आह्वान सुना, उन्हें भारत के लाखों लोगों के हितार्थ अमेरिका जाना होगा। वहाँ उन्हें अपनी बौद्धिक शक्ति द्वारा धन एकत्र करना होगा। भारत लौटकर उन्हें अपने देशवासियों के उत्थान हेतु स्वयं को समर्पित करना होगा या इस प्रयास में मर जाना होगा।[2]

अमेरिका में अपने यश एवं गौरव की ऊँचाइयों में विश्वधर्म–सम्मेलन के उस प्रथम रात्रि में यदि स्वामीजी ने कुछ सोचा था, तो वह भारतवासियों की दरिद्रता के विषय में ही था। उनकी अति दरिद्र मातृभूमि और धन–विलास से परिपूर्ण अमेरिका के बीच की विषमता को देख स्वामीजी सो न सके। भाव के आवेग में उन्होने अपना बिस्तर छोड़ दिया और फर्श पर लेटकर रोने लगे, ''हे माँ! क्या मैं नाम–यश की अपेक्षा करूँ, जबकि मेरी मातृभूमि सर्वाधिक दरिद्रता में डूबी हुई है। दरिद्र भारतवासियों की कितनी दुखद स्थिति है, वहाँ लाखों लोग एक मुट्ठी अन्न के लिये तरस रहे हैं, और यहाँ ये लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु लाखों रूपये खर्च कर रहे हैं। कौन भारत की जनता को ऊपर उठायेगा? कौन उन्हें रोटी देगा? मुझे मार्ग दिखाओं। हे माँ! मैं कैसे उनकी सहायता करूँ।''[3]

कुछ दिनों बाद उन्होंने एक शिष्य को लिखा– ''मैं इस देश में अपने कौतूहल को शान्त करने नहीं आया और न ही नाम या यश के लिये, बल्कि इसलिये आया हूँ, कि यदि मैं किसी भी प्रकार से भारत के दरिद्रों के लिये सहारा ढूँढ़ सकूँ।[4]

जैसा–कि बाद में ज्ञात हुआ स्वामीजी को सहायता नहीं मिली। विश्वधर्म–सम्मेलन के अपने व्याख्यानों में से एक में उन्होंने कहा– ''मैं इस देश में अपने निर्धन भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था, पर मैं यह पूरी तरह समझा गया हूँ कि एक ईसाई राष्ट्र में ईसाइयों द्वारा मूर्तिपूजकों के लिये सहायता पाना कितना कठिन है।''[5] यह सत्य है कि लोगों ने उन्हें बहुत पसंद किया ओर उनमे से कुछ ने बड़ी निष्ठा से उनका साथ दिया एवं मित्रवत् व्यवहार किया। किन्तु स्वामीजी की आशा के विपरीत उनके भारतीय कार्य के लिये उत्साहपूर्ण सहायता बड़े पैमाने पर कभी नहीं आयी। अपने 'प्रारम्भिक उद्देश्य' से हारे स्वामीजी भारत वापस आ जाते। परन्तु क्या वे आ सके?

हम उन्हें पाश्चात्य देशों में धन मिलने पर भी उसे न लेकर लगातार अपनी शिक्षाओं को फैलाते देख आश्चर्यचकित हो जाते है। एक पत्र में स्वामीजी ने लिखा है– मनु के अनुसार धन एकत्र करना, यहाँ तक कि किसी अच्छे कार्य के लिये भी संन्यासी के लिये अच्छा नहीं है ओर मुझे यह अनुभव होने लगा है कि प्राचीन ऋषि सही थे। मैं इन बचकाने विचारों में था कि यह करो और वह करो। शायद ये विक्षिप्त इच्छायें मुझे इस देश में लाने के लिये आवश्यक थी।[6]

इस बात के कुछ विचारक यह मीमांसा करते हैं यद्यपि स्वामीजी पाश्चात्य् देशों में अपने भारतीय कार्य हेतु धन एकत्र करने आये थे, तदनन्तर उन्होंने जाना कि यह सम्भव नहीं है, तथापि वे विदेश में रूके रहे, क्योंकि या तो उनके विचार पहले से अधिक उच्चतर हुये थे या फिर उनकी प्राथमिकताएँ बदल गयी थी। या अपने कार्य के

प्रति उनका दृष्टिकोण ओर भी बड़ा हो गया था। उनके अनुसार स्वामीजी को यह प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि पाश्चात्य को आध्यात्मिक संदेश की उतनी ही आवश्यकता है जितना कि भारत को भौतिक उन्नति हेतु धन की। अतः तब से पाश्चात्य जगत में आध्यात्मिकता के बीज बोना स्वामीजी का प्राथमिक कार्य हो गया, उन्होंने एक पत्र में आलासिंगा को लिखा है– मेरा उद्देश्य है यहाँ पर स्थायी रूप से कुछ करने का और उसी प्रयोजन के लिये मैं दिन–पर–दिन कार्य करता जा रहा हूँ। प्रत्येक दिन ही मैं अमेरिकी लोगों का विश्वास प्राप्त कर रहा हूँ।[7] उसी समय लिमड़ी के एक मित्र को वे लिखते हैंः इस देश में बहुत अच्छा चल रहा है। इस बार मैं उनके अपने शिक्षकों में से एक हो गया हूँ।[8]

कुछ पाश्चात्यवादी स्वामीजी के इस कथन का कि 'मेरे पास पाश्चात्यों के लिये एक सन्देश है, जैसा कि बुद्ध के पास प्राच्य के लिये था।[9] उद्धरण देकर कहते हैं कि स्वामीजी का पश्चिम देशों को जाने का विशेष प्रयोजन पश्चिम देशों का आध्यात्मिक पुनरूत्थान करना ही था। जबकि यह भी आंशिक रूप से सच हो सकता है कि पश्चिमी देशों के लिये स्वामीजी का दार्शनिक के रूप में रहने का ऐकांतिक दावा किसी भी प्रकार से भारतीयों द्वारा उनके भारतीय देशभक्त संत होने के दावे से भिन्न नहीं है। कुछ भारतीय सभी को यह विश्वास दिलाना चाहेंगे कि स्वामीजी केवल भारत और हिन्दूधर्म के लिये पश्चिमी देशों को गये थे। उदाहरण स्वरूप– स्वामीजी ने मद्रास में अपने युवा प्रशंसकों के समूह से जो कहा था, वे उसे इंगित करते हैंः समय आ चुका है हमारे मत के प्रचार का, समय आ गया है ऋषियों के हिन्दुत्व के क्रियाशील होने का। क्या हम अपने प्राचीन मत की दृढ़प्राचीर को इन विदेशियों के हाथों नष्ट होता देखकर भी निष्क्रिय खड़े रहेंगे? क्या हम इसकी अपराजेयता अथवा अभेद्यता से संतुष्ट हैं? क्या हम यूँ ही निष्क्रिय बने रहेंगे या अतीत की तरह देश–विदेश में अपने धर्म की महिमा के प्रचार हेतु आक्रामक भी होंगे? क्या हम अभी भी अपनी सामाजिक दलों और अपनी प्रान्तीयता की संकीर्णताओ से जकड़े रहेंगे।[10] या हम इनसे बाहर निकलकर अन्य लोगों के विचारसागर में से भारत का हित खोजने का प्रयास करेंगे। पुनरूत्थान हेतु भारत को पुनः शक्तिशाली और एकजुट होना पड़ेगा और अपनी सभी जीवन्त शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

एक दार्शनिक को अपना कहकर दावा करने की इच्छा पूर्णरूपेण समझने योग्य है। किन्तु हमें इस तथ्य को कदापि नहीं भूलना चाहिये कि– विवेकानन्द जैसे व्यक्तित्व को किसी देश, क्षेत्र यहाँ तक कि विश्व के किसी भी अन्य भाग में सीमित करना असम्भव है। वे प्रत्येक क्षेत्र में सार्वभौमिक हैं। वे इस या उस देश के नहीं, बल्कि पूरे विश्व के नागरिक हैं। वे सभी के है। किन्तु कोई भी उन पर अपना होने का विशेष दावा नहीं कर सकता है। अतः स्वामीजी की पश्चिम यात्रा का विशेष उद्देश्य न तो पश्चिम का आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है और न ही भारत का भौतिक उत्थान। किन्तु बहुत सम्भावना है कि ये दोनों ही किसी उच्चतर उद्देश्य में शामिल थे। जब भारत से किसी ने स्वामीजी से अपने काम को जारी रखने के लिये घर लौटने का आग्रह किया, तो स्वामीजी गरज उठे– ''घर लौट आऊँ, कहाँ है घर मैं मुक्ति–मुक्ति की परवाह नहीं करता, बल्कि झरने की तरह दूसरों के सुख के लिये मैं लाखों बार नरक जाने को भी तैयार हूँ'' यही मेरा धर्म है।[11] वे आलासिंगा को लिखते हैं, सत्य ही मेरा ईश्वर है, यह चराचर ब्रह्माण्ड ही मेरा देश है।

मेरे पास शिक्षा हेतु यही सत्य है कि– मैं ईश्वर की सन्तान हूँ।[12]

एक दूसरे पत्र में वे लिखते है, ''मैं अपने जीवन का उद्देश्य जानता हूँ, मेरे लिये अन्धराष्ट्रीयता नाम का कुछ भी नहीं है, मैं भारत का जितना हूँ, उतना ही विश्व का भी हूँ, इसमें पाखण्ड कुछ भी नहीं है।''[13]

और हाँ, ''*तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मेरा कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है, केवल भारतीय नहीं।''*[14]

स्वामीजी की जीवनी के कुछ दूसरे अध्येता इस बात से सहमत हैं कि स्वामीजी का संदेश केवल भारत अथवा पश्चिम के लिये नही, बल्कि पूरे विश्व के लिये था ओर उनका कार्यक्षेत्र पूर्व और पश्चिम दोनों के लिये समान था। किन्तु वे इस विचार से असहमत है कि जैसे–जैसे समय बीता स्वामीजी का पश्चिम जाने का उद्देश्य परिवर्तित होता, विकसित होता या बढ़ता गया। वे कहते हैं कि जो भी स्पष्ट कारण हो (जिनमे से कुछ उद्धृत किये गये है), प्रारम्भ

से ही स्वामीजी अपने दिव्य उद्देश्य ओर विश्वधर्म–सम्मेलन में अपनी भूमिका के विषय में पूरी तरह से अवगत थे, इसे अस्वीकार करना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी जानते थे कि विश्वधर्म–सम्मेलन उनके कार्य की पहली प्रत्यक्ष सीमा चिन्ह के रूप में माना जायेगा। पश्चिम देश में जाने के लिये समुद्री–यात्रा से एक महीने पहले जब स्वामीजी स्वामी तुरीयानन्द से मिले, तो उन्होने स्वामी तुरीयानन्द से उस विषय में स्पष्ट रूप से कहा– जो कुछ भी तुम सुन रहे हो, या वहाँ (विश्वधर्म–सम्मेलन की ओर इंगित करते हुए) जो हो रहा है, वह सब 'इसके लिये' ही हो रहा है, अपनी छाती पर प्रहार कर उन्होंने अन्तिम शब्दों पर जोर दिया, ''इसके लिये (मानों 'मेरे लिये') ही सब कुछ व्यवस्था की गई है।''[15]

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार यह एक विवादास्पद विषय है कि स्वामीजी अपने उद्देश्य की प्रकृति एवं परिणाम के विषय में पहले से ही जानते थे। यदि वे यह जानते थे, तो यह केवल एक आंशिक झलक थी, पर किसी प्रकार से स्वामीजी ने अत्यन्त सहज रूप से यह अनुभव किया कि उन्हें सागर पार जाना ही होगा। एक रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी जैसे असाधारण व्यक्तित्व के लिये विश्वधर्म–सम्मेलन में उपस्थित होने की इच्छा स्वाभाविक ही थी। उनके परिव्राजन जीवन के दौरान, कुछ विशिष्ट शक्तियों द्वारा जिनसे वे मिले थे, यह विचार उनके मस्तिष्क में बैठा दिया गया था। उदाहरण के लिये– पोरबन्दर के दीवान पंडित शंकर पांडुरंग ने उनसे कहा था–''स्वामीजी मुझे भ्रम है कि आप इस देश में कुछ अधिक नहीं कर सकेंगे। यहाँ कुछ व्यक्ति ही आपको पहचान पायेंगे, आपको पश्चिम में जाना चाहिये, जहाँ के लोग आपको और आपका मूल्य समझेंगें निश्चय ही सनातन धर्म का प्रचार कर आप पश्चिमी सभ्यता पर एक महान प्रभाव डाल सकेंगे।''[16]

मैसूर, रामनाद ओर खेतड़ी के राजाओं ने यात्रा का वित्तीय भार वहन करने का वादा किया और मद्रास के नवयुवक वह सब कुछ करने को अत्यन्त उत्साही थे, जो स्वामीजी के विश्वधर्म–सम्मेलन में भाग लेने के लिये सम्भव हो सकता था। स्वामीजी जैसे उत्सुक व्यक्ति के लिये तो किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए, साहसपूर्वक किसी भी आपात परिस्थिति को झेलने के लिये, वह सब सीखने को जो जीवन उन्हें सिखाना चाहे और अभावग्रस्त की सेवा करने में, चाहे वह जैसे भी सम्भव हो, विश्वधर्म–सम्मेलन आदर्श था। उससे भी अधिक इसलिए कि कदाचित् उन्होंने देख लिया था कि विश्वधर्म–सम्मेलन ही वह उचित मंच है, जहाँ से वे अपने जीवनदायी आध्यात्मिक कोश और विचारों को वृहत्तर रूप में आदान–प्रदान कर सकते है, जो उनके हृदय में रहकर भी अभिव्यक्ति हेतु लालायित थे।

निष्कर्ष

उल्लेखित इन सब दृष्टिकोणों के अनुसार कुछ कारक अथवा सामान्य कारक अवश्य थे, जिन्होंने स्वामीजी को विश्वधर्म–सम्मेलन में भाग लेने को प्रेरित किया। किन्तु स्वामीजी की जीवनी के कुछ अध्येता बताते है कि प्रमुख कारक, जो एक दार्शनिक अथवा पैगम्बर के जीवन को संचालित करते है वे हैं 'दैवीय कारक'। यदि हम इसकी उपेक्षा करे, तो हम कभी भी वास्तविक चित्रण की आशा नहीं कर सकते। 'दैव' एक दार्शनिक के लिये हम सबकी (साधारण मनुष्यों) अपेक्षा अधिक वास्तविक अथवा सत्य होता है।

विश्वधर्म–सम्मेलन के इतिहास में घटित घटना मात्र हैं यह मानव जाति के इतिहास में एक नये युग का प्रारंभिक बिन्दु बन जाता है। विश्वधर्म–सम्मेलन को उन बीस सम्मेलनों में से एक माना गया है, जो कि जगत के समक्ष कोलम्बियन व्याख्या (अर्थात् सभ्यता प्रदर्शन) के लिये आयोजित किया गया था। अन्य सम्मेलन तो स्त्रियों की उन्नति, सार्वजनिक प्रेस, दवा एवं शल्य चिकित्सा, आत्मसंयम, वाणिज्य और वित्त, संगीत, शासन एवं कानून आदि विषयों पर थे। किन्तु विश्वधर्म–सम्मेलन ने स्वामी विवेकानन्द के कारण लगभग पूरी प्रसिद्धि को हड़प लिया। उन्होंने विश्वधर्म–सम्मेलन के समक्ष ऐसे धर्म को प्रस्तुत किया, जो जीवन के साथ एक था। स्वामीजी ने जिस धर्म की शिक्षा दी, उसकी व्यापकता में अन्य सभी सम्मेलनों के विषयों को समायोजित किया जा सकता था। उन्होंने धर्म के

परम्परागत मूल को व्यापक किया। अब यह मात्र इतने तक ही सीमित नहीं था कि हमने मन्दिर, गिरिजाघर अथवा मस्जिद में क्या किया अथवा हम किस धार्मिक ग्रन्थ पर विश्वास करते हैं या किस ईश्वर की पूजा करते हैं। उसमें किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

संदर्भ सूची

1. Life of Sw. Vivekananda (eng) By his eastern and western disciples पृ. 34 ।
2. वही पृ. 343 ।
3. वही पृ. 349 ।
4. हरिपद मित्र को लिखा पत्र, दिस. 28, 1893 ।
5. विवेकानन्द साहित्य, खंड 1, पृ. 22 ओलीबुल को लिखा पत्र– 18 फरवरी, 1895 ।
6. आलासिंगा को लिखा पत्र– 1814, U.S.A ।
7. वेहेमिया चन्द लिम्बड़ी को लिखा पत्र– 23 अक्टूबर, 1894 ।
8. विवेकानन्द साहित्य (प्रश्नोत्तर) बुक्रलिन नैतिक संस्था।
9. वही 10, पृष्ठ 380 ।
10. Life of Sw. Viv. (i) 371 ।
11. स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित पत्र– 1894 ।
12. आलासिंगा को लिखित पत्र–अगस्त, 1895 अमेरिका।
13. आलांसिंगा को लिखित पत्र–9 सितम्बर, 1895 पेरिस।
14. आलासिंगा को लिखित पत्र– 20 नवम्बर, 1896 लंदन।
15. स्पमि (i) 385 ।
16. वही पृ. 295 ।

****